श्वेताश्वतर उपनिषद्

श्वेताश्वतर उपनिषद्–तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेद) से सम्बन्ध रखती है। वैशम्पायन की शिष्यपरम्परा में एक श्वेताश्वतर ऋषि हुए हैं, जिन के नाम पर कृष्णयजुर्वेद की एक शाखा श्वेताश्वतर * नाम से है, यह उपनिषद् उसी शाखा की है, इस लिये इस को श्वेताश्वतर उपनिषद् कहते हैं। आज कल इस उपनिषद् के विना श्वेताश्वतर शाखा का और कोई भाग नहीं मिलता है॥

श्वेताश्वतर के दो अर्थ हो सकते हैं, सुफेद खच्चर वा सुफेद खच्चरों वाला। यहां दूसरा अर्थ ही समुचित है, क्योंकि इसी चाल पर अर्जुन का उपनाम जो श्वेताश्व है, वह इसलिये है, कि अर्जुन के घोड़े श्वेत थे, और ऐसे ही हर्यश्व जो इन्द्र के लिये प्रयुक्त होता है, उस का अर्थ है, हरे घोड़ों वाला। ऋग्वेद के मण्डल ५ सूक्त ५२ से ६१ तक का ऋषि जो श्यावाश्व है, उस का अर्थ भी हमें काले घोड़ों वाला ही समुचित प्रतीत होता है न कि काला घोड़ा॥

श्वेताश्वतर उपनिषद् प्रधान दस उपनिषदों में नहीं आती है, तथापि यह अपने विषय की अपेक्षा से बड़ी

---

* श्वेताश्वतर के अनुयायी सब श्वेताश्वतर कहलाते हैं, इसी लिये इस को 'श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषद्'=श्वेताश्वतरों की मन्त्रोपनिषद् कहा है।

मनोहर है, और पुराने आचार्यों ने इस का पूरा आदर किया है। वेदान्त सूत्रों में इस की किसी श्रुति का स्पष्ट पता देकर कोई सूत्र रचना हुई हो, यह कहना तो कठिन है, पर श्रीशंकराचार्य ने १ । १ । ११; १ । ४ । ८; २ । ३ । २२ इन तीन सूत्रों का लक्ष्य इस की श्रुतियों को बतलाया है, और विद्यारण्य ने सर्वोपनिषदर्थानुभूतिप्रकाश में जो १२ उपनिषदें प्रमाणतया उद्धृत की हैं, उन में यह भी है ॥

प्रथम अध्याय

ओ३म् ब्रह्मवादिनो वदन्ति-किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः । अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् । १ ।

ब्रह्मवादी कहते हैं-क्या कारण ब्रह्म है * ? हम किस से जन्मे हैं, किस में जीते हैं, और किस में लीन होते हैं ? हे ब्रह्मवेत्ताओ ! [हमें बतलाओ] वह कौन अधिष्ठाता है; जिस की व्यवस्था पर हम सुखों में वा दुःखों में वर्तते हैं ॥१॥

---

* कई वेदवादी जिन्हों ने वेद से यह सीखा है कि ब्रह्म से इस जगत् का जन्म स्थिति और प्रलय होता है, वही हमारा अधिष्ठाता है, और उसी की व्यवस्थानुसार हम सुखों वा दुःखों को भोगते हैं, इस प्रकार से वेद में बतलाये हुए जगत्

ब्रह्म के विना और जो २ कारण सम्भव हैं, वा बतलाए जाते हैं, उन की पहले परीक्षा करते हैं :—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छाभूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् । संयोग एषां ना-नात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥

क्या काल, वा स्वभाव, वा नियति (होनी), वा यदृच्छा

के कारण ब्रह्म को वह अथ प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं, और देखना चाहते हैं, कि कई विद्वान् जो यह कहते हैं, कि इस जगत् का कारण काल है, और दूसरे कहते हैं, स्वभाव है, इत्यादि वचनों में कहां तक सचाई है, इस बात को प्रत्यक्ष करने के लिये वह उन की शरण में आए हैं, जो ब्रह्मवेत्ता हैं । उन की शरण में आकर उन पर अपना अभिप्राय इन शब्दों में प्रकट करते हैं, क्या कारण ब्रह्म है (अथवा काल आदि) ? यद्यपि इस प्रश्न वाक्य में काल, स्वभाव इत्यादि का नाम नहीं लिया, पर प्रश्न की बनावट प्रकट करती है, कि ब्रह्म के बिना जो दूसरे कारण बतलाये जाते हैं, उनके तत्व को भी वे जानना चाहते हैं, अतएव इस से अगले मन्त्र में उन पर विचार किया गया है, प्रश्न वाक्य में काल आदि के स्पष्ट न कहने का हेतु यह है, कि इन जिज्ञासुओं को विश्वास यही है, कि कारण ब्रह्म है, क्योंकि वेद से यही शिक्षा पाई है, और जिन के पास बैठे हैं, वह भी ब्रह्मविद् हैं ॥

(Chance) वा भूत कारण हैं * अथवा पुरुष (जीवात्मा)

* हम प्रायः देखते रहते हैं, कि सब वस्तुएं अपने २ ऋतु में उत्पन्न होती वा फलती हैं । वस्तुतः जो नाम उत्पत्ति है, उस सब के लिये एक न एक ऋतु काल नियत है, यही हेतु है काल को कारण मानने में । पर हम दूसरी ओर यह देखते हैं, कि जो जिस का स्वभाव (अपनी नेचर Nature) है, उस के सदृश ही उस से कार्य्य होता है, विरुद्ध नहीं, और उसी से वह कार्य्य होता है, दूसरे से नहीं । अग्नि जलाती ही है, गलाती नहीं, और अग्नि ही जलाती है, न कि पानी । गेहूं ही से गेहूं उगता है, न कि जौं से, और गेहूं ही गेहूं से उगता है, न कि जौ । यह हेतु है स्वभाव को कारण मानने में । फिर हम यह भी देखते हैं कि हम जोड़ मेल तो कुछ और ही करते रहते हैं, और हो कुछ और ही जाता है, यह हेतु है नियति (होनी) को कारण मानने में । अतएव अपने प्रयत्न से उलटा होता हुआ देख कर कहते हैं ' होनी बड़ी बलवान है ' । फिर हम देखते हैं, कि जहां एक बड़ का वृक्ष है, वहां शीशम के उत्पन्न होने के लिये कोई रोक न थी, यह एक संयोग की बात है, कि वहां बड़ का बीज गिरा, न कि शीशम का, यदि शीशम का गिरता तो शीशम ही होता, न कि बड़, सो यह एक संयोग (यदृच्छा) की बात है, और सब जगह भी यही बात हो सकती है, इस पर निर्मूल लम्बे चौड़े विचार उठाना व्यर्थ है, सो यह हेतु है यदृच्छा (इत्तिफाक Chance) को कारण मानने में । और पांच महाभूतों को कारण मानने में यह हेतु है, कि हम जो कोई कार्य देखते हैं, वह इन्हीं से प्रकट होता हुआ देखते हैं ।

कारण है, यह विचारणीय है। इन का संयोग भी (कारण) नहीं हो सकता है, क्योंकि यह अनात्म पदार्थ (जड़ पदार्थ) हैं * और आत्मा (जीवात्मा) भी समर्थ नहीं, क्योंकि वह स्वयं सुख दुःख में पड़ा है † ॥२॥

इस प्रकार विचार द्वारा, उक्त कारणों में से किसी को भी स्वतन्त्र न पाकर, तब उन्होंने ध्यान और समाधि के द्वारा उस स्वतन्त्र शक्ति को प्रत्यक्ष किया, जो इन सारे कारणों की अधिष्ठात्री होकर सब के अन्दर वर्तमान है, यह दिखलाते हैं:-

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः । ३ ।

(तब) उन्होंने ध्यान और समाधि में मग्न हो अपने कार्यों (सूर्य आदि) के अन्दर छिपी हुई, परमात्मा की निज शक्ति को प्रत्यक्ष देखा, जो (देव) अकेला काल और आत्मा समेत उन (पूर्वोक्त) सारे कारणों का अधिष्ठाता है ॥३॥

---

* इन में से एक २ को कारण मानना तो दूर रहा, इन का समुदाय भी स्वतन्त्र कारण नहीं हो सकता है, क्योंकि यह जड़ हैं, और जड़ पदार्थ कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं होता है॥

† आत्मा चेतन होने से स्वतन्त्र तो है, पर वह भी जगत् के रचने में समर्थ नहीं, क्योंकि वह स्वयं किसी दूसरी शक्ति के अधीन सुख दुःख भोगता है ॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशति प्रत्यराभिः । अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥

(हम एक ऐसे रथ को देखते हैं) जिस की १ नेमि है, ३ लपेटें हैं, १६ सिरे हैं, ५० अरे हैं, २० प्रत्यरे हैं, ६ अष्टकों (अट्ठों) से युक्त है, भांति २ के रंगों की उस में एक फांस है, उस के मार्ग तीन हैं, उस का एक घुमाव है जिस के दो निमित्त हैं * ॥ ४ ॥

---

* यह इस चलते हुए ब्रह्माण्ड का एक रथ के रूपक में वर्णन है। रथ का पहिया बनाने में कुछ कुबड़ी लकड़ियों को एक दूसरी के साथ गांठने से एक गोल पहिया बन जाता है, उस गोल पहिये के ऊपर की गोल रेखा नेमि कहलाती है, उसको ऊपर से जो रबड़ से मढ़ देते हैं, वा लोहे का कड़ा चढ़ाते हैं, वह उस की लपेट है, और पहिये की लकड़ियों के अलग२ सिरे हैं, नाभि और चक्र के मध्य में जो लकड़ियां होती हैं, वह अरे हैं, और उन की दृढता के लिये जो साथ और छोटे २ अरे लगाए जाते हैं, वह प्रत्यरे (सहायक अरे) हैं ॥

यहां १ नेमि प्रकृति । प्रकृति के ३ गुण सत्व, रजस, तमस, ३ लपेटें हैं। १६ सिरे, १६ विकार हैं, अर्थात् पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश यह पांच महाभूत । वाणी, हस्त, पाद, पायु (गुदा) और उपस्थ-यह पांच कर्मेन्द्रिय । नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, घ्राण और रसना यह पांच ज्ञानेन्द्रिय । और मन ।

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रांपञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्धयादिमूलाम्। पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥

सांख्य सिद्धान्त में यह १६ केवल विकार (विकृति) माने हैं। अर्थात् प्रकृति के विकार के यह सोलह सिरे हैं, यहां विकार की समाप्ति है (देखो सांख्य सप्तति कारिका ३) ॥

पचास अरे=पचास प्रत्यय भेद, जो इस प्रकार वर्णन किये हैं, (१) पांच विपर्य्यय=मिथ्या ज्ञान के पांच भेद अर्थात् तमस्, मोह महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र, वा पतञ्जलि के अनुसार अविद्या (मिथ्या ज्ञान) अस्मिता (आत्मा और अन्तःकरण की ग्रन्थि) राग द्वेष और अभिनिवेश (भय) (देखो सांख्य सूत्र ३।३७) (२) अठाईस अशक्तियां (सांख्य ३।३८) अर्थात् नौ तुष्टियां (सांख्य ३।३९) और आठ सिद्धियां (सांख्य ३।४०)। यह सब मिला कर (५+२८+९+८) पचास अरे हैं (विस्तृत देखो सांख्य सूत्र ३।३७,४५, सांख्य कारिका ४७) बीस सहायक अरे यह हैं, दस इन्द्रिय और दस उन के विषय अर्थात् पांच कर्मेन्द्रिय-वाणी, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ पांच इन के कर्म, बोलना, पकडना, चलना, मल का त्यागना और सन्तानोत्पादन। पांच ज्ञानेन्द्रिय, नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वचा, और पांच इन के ज्ञान, देखना, सुनना, सूंघना, चखना और छूना ॥

वा हम एक नदी को ध्यान में लाते हैं, जिस का पानी पांच प्रवाहों का है, वह पांच चश्मों से निकल कर भयानक और टेढ़ी बहती है, पांच प्राण उस में लहरें हैं, उसका (सिरा) पांचों ज्ञानों का कारण है, उस में पांच भंवर हैं, उस के प्रवाह के वेग पांच दुःख हैं, उस के भेद पचास हैं, और जोड़ पांच हैं * ॥ ५ ॥

यद्यपि मूल में प्रकट नहीं किया है, कि यहां एक नेमि से प्रकृति अभिप्रेत है, इत्यादि, तथापि ऊपर कही हुई प्रक्रिया सांख्य में ज्यों की त्यों है, और इस उपनिषद् में सांख्य और योग की परिभाषाएं पाई जाती हैं । ६ । १३ में सांख्य और योग को परब्रह्म की प्राप्ति का साधन भी बतलाया है, इस लिये हम ऊपर की संख्याओं में सांख्य और योग के अनुसार अर्थ लेने में असली अभिप्राय पर पहुंच जाते हैं । पर अष्टक छः से जो अभिप्राय है, वह पूरा स्पष्ट नहीं है, शंकराचार्य्य ने छः अष्टक यह लिखे हैं, आठ प्रकृतियें (गीता० ७ । ४) आठ शरीर के धातु,-आठ ऐश्वर्य, आठ भाव (बुद्धि के भेद) आठ (प्रकार के) देवता, आठ आत्मा के गुण । एक फांस, कामना (इच्छा) है, यह नाना रूपों वाली विषयभेद से है, अर्थात् स्वर्ग, पुत्र, अन्न आदि की इच्छा ।

तीन मार्ग=धर्म, अधर्म और अज्ञान ।

एक भूल आत्मा का मिथ्याज्ञान है, अर्थात् देह, इन्द्रिय मन बुद्धि इन अनात्म वस्तुओं को आत्मा जानना । इस के दो निमित्त पुण्य और पाप हैं ।

* यहां फिर संसार को नदी के रूप में वर्णन किया है,

इस चक्र में आत्मा का घूमना, और उस से छूटने का उपाय बतलाते हैं :—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥६॥

सब को जीवन देने वाले और सब को आश्रय देने वाले उस बड़े ब्रह्मचक्र में हंस (जीवात्मा) घुमाया जारहा है, जब वह (देह से) पृथक् (आत्मा) को, और उस के प्रेरक (घुमाने वाले परमात्मा) को जान लेता है, तब वह उस से प्यार किया हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

उद्गीतमेतत् परमं तु ब्रह्म तस्मिँस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥७॥

पांच प्रवाह पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, पांच चश्मे पांच महाभूत हैं, पांच लहरें पांच प्राण हैं, सिरा मन है, जो बाह्य ज्ञान के पांचों प्रवाहों का मूल है, पांच भंवर, पांच ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषय हैं, पांच वेग पांच दुःख हैं, गर्भ का दुःख, जन्म का दुःख, जरा का दुःख व्याधि का दुःख और मृत्यु का दुःख । पचास भेद (टुकड़े) जो पूर्व ५० आरे कहे हैं पांच पर्व, पांच क्लेश अविद्या अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश ॥

(उपनिषदों में.) यह गाया गया है कि ब्रह्म (शुद्ध ब्रह्म) सब से परे है, उस में (तीनों) लोक हैं वह उत्तम आश्रय है और अविनाशि है, वेदवादी जिन्हों ने यहां उस को अन्दर (हृदयाकाश में) ढूंढा, वह ब्रह्म में लीन हुए और तत्परायण हुए जन्म से छूट गए ॥ ७ ॥

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः । अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥८॥

यह जो नाशवान् (कार्य्य) और नाश रहित (कारण प्रकृति) है जो व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त है । इस सारे विश्व का ईश्वर पालन पोषण करता है । जीवात्मा * जो कि असमर्थ है, वह (इस के फलों का) भोगने वाला होने के कारण (इस में) बद्ध होता है, पर जब वह परमात्मा को जान लेता है, तो वह सारी फांसों से छूट जाता है ॥ ८ ॥

ज्ञाज्ञौ द्वावजा वीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता । अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ ९ ॥

---

* जीवात्मा अल्पशक्ति है, वह प्रकृति पर वस नहीं रखता इसलिए प्रकृति उसको बांध लेती है, पर यह बन्धन वह आप अपने लिए डालता है, जब उसके रसों में फंस जाता है ।

वह दो हैं, एक जानने वाला (सर्वज्ञ, ईश्वर) और दूसरा अनजान (अल्पज्ञ, जीव) दोनों अजन्मा हैं, एक ईश (समर्थ, सर्वशक्ति) है और दूसरा अनीश (असमर्थ, अल्पशक्ति) है, और एक और अजन्मा अनादि है, जो भोक्ताओं के लिये भोग्य पदार्थों से युक्त है। अनन्त आत्मा विश्वरूप और अकर्ता है *। यह ब्रह्म का जो त्रिक † है जब मनुष्य इसको पा लेता है, कि—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। तस्याभिध्यानाद्योजनात् तत्वभावा द्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥१०॥

प्रकृति परिणामिनी (बदलती रहने वाली) है, हर (पुरुष) अमृत है और अपरिणामी है, इन दोनों प्रकृति और पुरुष पर एक देव ईशान (हकूमत) करता है । उस एक के ध्यान से, उस में जुड़ जाने से, तन्मय हो जाने से फिर अन्त में सारी माया हट जाती है (सब धोखे मिट जाते हैं) ॥१०॥

---

* शबलरूप में वह सब रूपों में चमक रहा है, और स्वरूप में शान्त है, अकर्ता है।

† त्रिक, तीन का समुदाय, (१) परमात्मा, उत्पन्न करने वाला और शासन करने वाला, (२) जीवात्मा, बन्ध और मोक्ष का भागी (३) प्रकृति,जो भोग्य वस्तुओं की जननी है, देखो आगे ॥ १२ ॥

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशै-र्जन्ममृत्युप्रहाणिः । तस्याभिध्यानात्तृतीयं देह भेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥११॥

जब मनुष्य देव को जान लेता है, तो सारी फांसें छूट जाती हैं, क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) क्षीण हो जाते हैं, और उन के क्षीण होने से जन्म मृत्यु बन्द हो जाते हैं । उस के ध्यान से देह से अलग होने पर, (ब्रह्म लोक में) तीसरा * जो पूर्ण ऐश्वर्य है, वह प्राप्त होता है, और तब पुरुष केवल हुआ आप्तकाम हो जाता है † ॥११॥

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदि-तव्यं हि किञ्चित् । भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥१२॥

---

* ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य से नीचे दो ऐश्वर्य और हैं, मनुष्यलोक का और पितृलोक का, यह दोनों इस तीसरे ऐश्वर्य से छोटे हैं (देखो उपनिषदों की शिक्षा, अ० ७ पृष्ट १९८ से २०६ और अ० ८ पृष्ट २५८) ॥

† ब्रह्मलोक में पहुंच कर उस ब्रह्म के दर्शन होते हैं, और वह केवल (अपने स्वरूप में अवस्थित) होता है, और शान्त होता है । कामनाओं की हलचल बंद हो जाती है (देखो० उपनिषदों की शिक्षा अ० ८ पृष्ट २०१) ॥

इस को जानो, जो सदा तुम्हारे आत्मा में वर्तमान है, *

* इसको नियम से अपने आत्मा में ही जानना चाहिये, इस पर स्वामि शंकराचार्य ने शिवधर्मोत्तर से यह प्रमाण दिये हैं :—

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः ।
आत्मस्थं यः परित्यज्य बहिस्थं यजते शिवम् ॥
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य लिहात् कूर्परमात्मनः ।
सर्वत्रावस्थितं शान्तं न पश्ययन्तीह शङ्करम् ॥
ज्ञान चक्षुर्विहीनत्वादन्धः सूर्यं यथोदितम् ।
यः पश्येत् सर्वगं शान्तं तस्याध्यात्मस्थितः शिवः ॥
आत्मस्थं ये न पश्यन्ति तीर्थे मार्गन्ति ते शिवम् ।
आत्मस्थं तीर्थमुत्सृज्य बहिस्तीर्थादि यो व्रजेत् ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गति ॥

योगीजन शिव को अपने आत्मा में देखते हैं, न कि प्रतिमाओं में । जो आत्मस्थ शिव को छोड़ कर वहिस्थ (बाहर स्थित) शिव को पूजता है, वह अपने हाथ पर रक्खे लड्डू को छोड़ कर अपनी कुहनी को चाटता है । सर्वत्र वर्तमान, शान्त, शङ्कर को यहां (आत्मा) में नहीं देखते हैं, क्योंकि वह ज्ञान चक्षु से हीन हैं, जैसे अन्धा उदय हुए सूर्य को नहीं देखता है । जो सर्व व्यापक शान्त को देखे, उस के लिये शिव अपने अन्दर स्थित है । जो आत्मस्थ शिव को नहीं देखते हैं, वह शिव को तीर्थ पर ढूंढते हैं । आत्मस्थ तीर्थ को छोड़कर जो बाहर के तीर्थ आदि को जाता है, वह हाथ में स्थित महारत्न को छोड़ कर काच को ढूंढता है ।

इस से परे कुछ जानने योग्य नहीं है, भोक्ता (जीव) भोग्य (प्रकृति और उस के कार्य) और प्रेरक (ईश्वर) को समझ कर सब समझा जाता है, यह त्रिक ब्रह्म सम्बन्धी है ।

उसके दर्शन किस उपाय से होते हैं, यह दिखलाते हैं-

वन्हेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः । स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥ १३ ॥

जैसा कि अरणि में स्थित भी अग्नि की मूर्ति नहीं दीखती है और न ही उस के सूक्ष्मरूप (जो अरणि के अन्दर उस समय भी है) का नाश है, वह (अरणिगत अग्नि) फिर २ उत्तरारणि और अधरारणि (के रगड़ने) के द्वारा ग्रहण किया जाता है, इन दोनों बातों की न्याई आत्मा ओंकार के द्वारा देह में (ध्यान से पहले छिपा हुआ ध्यानाभ्यास से ग्रहण किया जाता है) * ॥ १३ ॥

---

* यज्ञ में अग्नि उत्पन्न करने के लिये पीपल के दो काष्ठ विशेष अपने नियत आकार में तय्यार किये जाते हैं, यह दोनों अरणियां कहलाती हैं, उन में से एक को नीचे रख कर और दूसरे को मथाने की तरह ऊपर रख कर मथन करके अग्नि निकालते हैं, इन दोनों अरणियों में से निचली अधरारणि और ऊपर की उत्तरारणि कहलाती है । यह अग्नि जो मथन करने से प्रकट होती हैं, इस की परमात्मा के दर्शन से तुलना की गई है । अग्नि पहले पहल नहीं दीखती है, यद्यपि उस का

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥१४॥

अपने देह को अधरारणि, और ओम् को उत्तरारणि बना कर, ध्यान की रगड़ के बार २ करने से छिपी आग की भांति उस परम ज्योति को देखे ॥१४॥

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणिषु चाग्निः । एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ १५ ॥

जैसे तिलों में तैल, दही में मक्खन, स्रोतों में जल * और अरणियों में अग्नि (पीलने, चिलोने, खोदने और रगड़ने से ग्रहण की जाती है) इस प्रकार परमात्मा आत्मा में ग्रहण किया जाता है, यदि कोई सत्य और तप से उसे देखता है ।

सूक्ष्मरूप नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि जूंही अधरारणि को उत्तरारणि से मथन किया जाता है, तो अग्नि प्रकट हो जाती है । इसी प्रकार परमात्मा इस देह में पहले (अज्ञानावस्था) में नहीं दीखता है, यद्यपि वह देह में सदा वर्तमान है. जूं ही ओम् के द्वारा देह को बार २ मथन किया जाता है, तो चिंगाड़ी के दर्शन की तरह साक्षात् दीख जाता है ।

* नदी जो सूखी पड़ी है उस के अन्दर छिपा हुआ पानी है, जो थोड़ा सा ही खोदने से निकल आता है ।

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत्परं।
तद् ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥ १६ ॥

दूध में रमे हुए मक्खन की भांति हर एक में व्यापे हुए आत्मा को वह देखता है, उस की प्राप्ति का मूल आत्मविद्या और तप है। यह ब्रह्म है, जिस में उपनिषद् का तात्पर्य है, हां यह ब्रह्म है, जिस में उपनिषद् का तात्पर्य है * ॥ १६ ॥

दूसरा अध्याय

प्रथम अध्याय में दिखलाया है, कि ऋषियों ने ध्यान और समाधि के द्वारा छिपी हुई देवात्मशक्ति को देखा, अब उस ध्यान और समाधि के स्वरूप को फलसहित वर्णन करते हैं :—

युञ्जानःप्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः। अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत ॥१॥

सविता पहले मन को जोड़ कर और बुद्धियों को फैला कर अग्नि की ज्योति को देख कर पृथ्वी से ऊपर लाया † ।१।

---

* दो वार पाठ अध्याय की समाप्ति के लिये है।

† इस अध्याय में आठवें मन्त्र से लेकर योग का वर्णन है, उस से पहले सात मन्त्र सविता की महिमा में हैं, सविता

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्यै ॥२॥

उदय होते हुए सूर्य के सम्बन्ध से शबल रूप में परमात्मा का नाम है, योग की प्राप्ति के लिये ईश्वरप्रणिधान एक उत्तम उपाय है । (देखो योग १ । २३) सो योग के आरम्भ में इन मन्त्रों के द्वारा परमात्मा की महिमा गाने से ईश्वरप्रणिधान सिखलाया है । इस लिए कि भक्तिविशेष से हम परमात्मा के अनुग्राह्य हों, अन्तराय (विघ्न) हमारे यत्न से हट जावें और हम निर्विघ्न अभ्यास से आत्मा और परमात्मा के दर्शन करें (देखो योग १ · २६)

दूसरा, इस अध्याय में क्रम से यह बोधन किया है कि पहले हमें यज्ञ करने चाहियें उस के पीछे योगाभ्यास । क्योंकि कर्मों के द्वारा शुद्ध हुआ अन्तःकरण ही योग के योग्य होता है, इस लिए कर्मों के पीछे योगाभ्यास, तब समाधि द्वारा आत्मा और परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है ।

यह मंत्र तैत्तिरीयसंहिता ४ । १ । १ । २ । १; वाजसनेयी संहिता [यजुर्वेद] ११ । १; और शतपथ० ६ । ३। १ । १२ । में है । तैत्तिरीय का पाठ उपनिषद् के साथ मिलता है, वाजसनेय पाठ में 'धियः,' की जगह 'धियम्' और 'अग्नि' की जगह 'अग्ने' है । पहले पांच मंत्र अग्नि चयन के विषय में लगाए हैं । अभिप्राय यह है —

सविता मन और इन्द्रियों को युक्त करके अर्थात् पूरे

सविता देव की अनुज्ञा में युक्त हुए मन के द्वारा हम स्वर्गीय जीवन को प्राप्त हों * ॥२॥

युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।३

† सविता उन देवों को, जो चमकते हुए आकाश में चल रहे हैं, और जो बहुत बड़ी ज्योति को देंगें, उनको मन और बुद्धि से प्रेरता है ‡ ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । विहोत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।४।

ज्ञानी जन अपने मन और विचारों को एक महान् और सर्वज्ञ ऋषि में लगाते हैं वह जो नियमों का पहचानने

श्य न द्वारा ज्योति से अग्नि का पता लगाकर उस को मण्डल (गोले) से ऊपर लाया है, जिस से हमारा जीवन है ॥

* तैत्ति० सं० ४ । १ । १ । १ । २; वाज० सं० ११ । २; शत० ६ । ३ । १ ।

† तैत्ति० सं० ४ । १ । १ । १ । २; वाज० सं० ११ । ३ । तैत्ति० में 'युक्त्वाय मनसा" पाठ है, और वाज० में युक्त्वाय सविता' ।

‡ इस सौर जगत् में विद्युदादि सारे देवताओं का प्रेरक सविता है ।

वाला है (सविता)। उस अकेले ने ही यज्ञों को रचा है, सविता देव की स्तुति हमारे चारों ओर फैली हुई है *।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोकएतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥

(हे द्यावापृथ्वी) तुम दोनो के (अन्तर्यामी) अनादि ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूं। मेरा यश सूर्य के मार्ग की तरह फैले, अमृत (परमात्मा) के वे सारे पुत्र (मुक्त जन) सुनें, जो दिव्य स्थानों को पहुंचे हैं †।

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राभियुञ्जते। सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥६॥

---

* तैत्ति० सं० ४।१।१।१।४; १।२।१३।१।१; वाज० सं० ५।१४; ११।४; ३७।२७; ऋग् ५।८१।१; शत० ब्रा० ३।५।३।११; ६।३।१।१६॥

† तैत्ति० सं० ४।१।१।२।१; वाज० सं० ११।५; ऋग् १०।१३।१; अथर्व० १८।३।३९। यहां हम ने वाजसनेय का पाठ दिया है, और वह ऋग्वेद के साथ मिलता है, तैत्तरीय का पाठ 'विश्लोक एतु' की जगह 'विश्लोका यन्ति'; 'सूरेः' की जगह 'सूराः' और 'शृण्वन्तु' की जगह 'शृण्वन्ति' है॥

जहां अग्नि मथन की जाती है, जहां वायु शब्द करता है, जहां सोम अधिक बहाया जाता है, वहां मन उत्पन्न होता है *,

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्वमक्षिपत् ॥७॥

सविता की प्रेरणा से हम अनादि ब्रह्म को प्यार करें, यदि तू वहां (अनादि ब्रह्म में) अपना स्थान बनाए, तो तुझे पहला कर्म हानि नहीं पहुंचाएगा † ॥ ७ ॥

---

* सोमयज्ञ में अग्नि को जलाकर और वायु से उसे प्रदीप्त करके ऋत्विज एकाग्र चित्त होकर स्तोत्र गाते हैं, अथवा जहां अग्नि (अर्थात् परमात्मा) जो सारी अविद्याओं को जला देता है, मथन किया जाता है, अर्थात् ओम् के साथ देह में मथन करके प्रकाशित किया जाता है, जहां रेचक आदि प्राणायाम करने से वायु शब्द करता है, वहां मन ब्रह्माकार होता है, न कि अशुद्ध अन्तःकरण में (शंकराचार्य) ॥

† केवल कर्म सांसारिक शुभ फल देता है, संसार से परे नहीं ले जाता । पर जिसने अपने रहने का स्थान परमात्मा में बना लिया है, कर्म उसको संसार में नहीं बांधता, अपितु चित्तशुद्धि द्वारा उपासना में सहायक होता है (देखो ईश, १ के ११) इसी लिए यहां पहले कर्म और पीछे उपासना का वर्णन है ॥

अब योग की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए आसन, प्राणायाम और स्थान का वर्णन करते हैं—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य । ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥८॥ प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत । दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥९॥ समे शुचौ शर्करावन्हिवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः । मनोऽनुकूले न तु चक्षुःपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥१०॥

... शरीर के तीन अंगों (छाती, गर्दन और सिर) को सीधा रखकर इन्द्रियों को मनके साथ हृदय में प्रवेश करके, ओंकार की नौका पर सवार होकर, भय के लाने वाले सारे प्रवाहों से पार उतर जाए । ९ । (शरीर की) सारी चेष्टाओं को वश में करके प्राणों को रोके, और प्राण के क्षीण होने पर नासिका से श्वास ले * सचेत सारथि जैसे घोड़ों की चञ्चलता को रोकता है, † इस प्रकार अप्रमत्त

---

* गीता ५ । २७ । † ऐसा ही अलङ्कार कठ० ३ ।-४-६ में है ।

होकर मन को रोके ।।९ ऐसे स्थान पर योग का अभ्यास करे, जो सम है, शुद्ध है, कंकर, बालू और अग्नि से रहित है, जो शब्द जल और लता मण्डप * आदि से मन के अनुकूल है, और नेत्रों को पीड़ा देने वाला नहीं है, एकान्त है, और वायु के झोकों से रहित है । १० ।

अब योगाभ्यास में सफलता के चिन्ह कहते हैं—

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत् स्फटिकशशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥११॥ पृथिव्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते । न तस्य रोगो न जरा न दुःखं प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥१२॥ लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवं च । गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥१३॥

जब अभ्यास पूरा होजाता है, तब पहले यह रूप दीखते हैं, कुहर, धुआं, सूर्य्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत, बिलौर और चन्द्र, तब इनके पीछे ब्रह्म का प्रकाश होता है ॥११॥

---

* शब्द,=शोर; जल जिस पर बहुत से लोग इकट्ठे होते हों, और आश्रय, मण्डप इनसे भी वर्जित देश हो (शंकराचार्य)

जब पृथिवी, जल, तेज वायु और आकाश प्रकट होते हैं, अर्थात् योग के पांच गुण प्रवृत्त होते हैं * तब फिर योगी के लिये न रोग है, न जरा है न दुःख है क्योंकि उसने वह शरीर पालिया है जो योग की अग्नि से बना है। १२। योग का पहला फल यह कहते हैं, शरीर हलका होजाता है, आरोग्य रहना है, विषयों की लालसा मिट जाती है, कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर होजाता है, गन्ध शुभ होता है, और मलमूत्र थोड़ा होता है। १३।

इस के पीछे उसे आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात् होताहै—

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधातम्॥ तद्वाऽऽत्मतत्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः॥१४॥

---

* पंच महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश हैं, इनके पांच गुण-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द, योग के गुण हैं, संयम द्वारा इन का साक्षात्कार योग प्रवृत्ति कहलाती है, जैसा कि नासिका के अग्र में संयम करने से दिव्य गंध का साक्षात्कार होता है। इसी प्रकार जिह्वा के अग्र में दिव्य रस का, तालु में दिव्यरूप का, जिह्वा के मध्य में दिव्य स्पर्श का और जिह्वा के मूल में संयम करने से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। इन के होने पर मन स्थिर होजाता है, क्योंकि फिर उस को बाह्य विषय नहीं खींच सके [देखो योगसूत्र १ । ३५]

जैसे वह रत्न जो मट्टी से लिबड़ा हुआ है, वह जब धोया जाता है, तो फिर तेजोमय हुआ चमकता है, इस प्रकार देही आत्मा फिर आत्मतत्त्व (आत्मा के असली स्वरूप) को देखकर शोक से पार हुआ कृतार्थ होजाता है ।१४।

आत्मतत्त्व से ब्रह्मतत्त्व को देखकर मुक्त होजाता है—

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् । अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।१५।

फिर जब सावधान होकर आत्मतत्त्व से ब्रह्मतत्त्व को देखता है, तब वह उस अजन्मा अटल (कूटस्थ) और सारे तत्त्वों से शुद्ध * देव को जानकर सारी फांसों से छूट जाता है ।१५।

एष हि देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोहजातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ १६ ॥

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । य ओषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥१७॥

---

* यही शुद्ध स्वरूप है, जिसको मन, वाणी नहीं पहुंचते किंतु केवल आत्मतत्त्व से जाना जाता है।

यह देव है, जो सारी दिशाओं के साथ २ फैला हुआ है, यह (हिरण्यगर्भ रूपसे) पहले प्रकट हुआ, यह इस (ब्रह्माण्ड) के अन्दर (अन्तर्यामी रूप से) है, । यह प्रकट हुआ है और यह प्रकट होगा। और यह सब लोगों के पीछे सर्वतोमुख (सब को देखता हुआ) ठहरता है * । १६ ॥ जो देव अग्नि में है, जो जलों में है, जो सारे भुवन में आवेश किये हुए है, जो ओषधियों में है, जो वनस्पतियों में है, उस देव को नमस्कार है, नमस्कार है।

तीसरा अध्याय।

इस तीसरे अध्याय में ब्रह्म को ईश और रुद्र के रूप में सृष्टि और प्रलय का कारण दिखला कर उससे परे शुद्ध स्वरूप और उस स्वरूप के ज्ञान से अमृतत्व की प्राप्ति दिखलाते हैं।

य एको जालवानीशत ईशिनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशिनीभिः । य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १ ॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशिनीभिः । प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति

---

* वाज० सं० ३२। ४; तैत्ति० आर० १०। २३ ।

सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥

वह जालवान् * जो अकेला अपनी शक्तियों से ईशन करता है, जो सारे लोकों पर अपनी शक्तियों से ईशन करता है, जो अकेला ही है, जब उनको जन्म देता है, और आगे बढ़ाता है, जो इसको जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते, हैं ॥१॥ क्योंकि रुद्र एक हैं, उन्हों ने (जानने वालों ने) दूसरा नहीं ठहराया है, जो अपनी शक्तियों से इन लोगों पर ईशन करता है। जो सब लोगों के पीछे खड़ा है, और सारे भुवनों को रचकर रक्षा करने वाला अन्तकाल में इस को समेट लेता है ॥१७॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥ यो देवनां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥

---

* जालवान्, मायी, यह माया जाल है, जिस ने हमें भ्रमाया हुआ है, और परमात्मा इसका मालिक है ।

यह * एक देव, जिसके नेत्र, भुजाएं, और पाद हरएक जगह पर हैं, † वह द्यौ और पृथ्वी को उत्पन्न करता हुआ भुजाओं से और पंखों से एक साथ धमाता (धौंकता) है ‡ ॥३॥ जो § देवताओं का रचने वाला और बढ़ाने वाला है, रुद्र, सब का मालिक, महर्षि (बड़ा देखने वाला) है, जिसने पहले पहल हिरण्यगर्भ को प्रकट किया, वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करें ॥४॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशी

---

* ऋग्० १० । ८१ । ३; वाज० सं० १७ । १९; अथर्व० १३ । २ । २६; तैत्ति० सं० ४ । ६ । २ । ४; तैत्ति० आर० १० । १ । ३ ।

† उसके नेत्र सब जगह हैं अर्थात् वह सब जगह देखता है, सब पर उसकी दृष्टि है; सब जगह मुख (चेहरा) है अर्थात् सब जगह उसके दर्शन मिल सक्ते हैं । सब जगह भुजाएं हैं अर्थात् उस की रक्षा सब जगह है । उसके पाद सब जगह हैं, अर्थात् वह सब जगह पहुंचा हुआ है ।

‡ द्यौ और भूमि को धौंक कर गर्म करने से अभिप्राय है । शंकराचार्य ने 'संधमति' का अर्थ 'संयोजयति'=संयुक्त करता है' किया है और अभिप्राय यह लिया है कि मनुष्यों को भुजाओं से और [पक्षियों को] पंखों से संयुक्त करता है ।

§ देखो ४ । १२ ।

हि ॥ ५ ॥ यामिषुं गिरिशान्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ ६ ॥

* हे रुद्र ! † हे गिरिशान्त (मेघ में रहने वाले) तेरा स्वरूप जो शिव है, भयानक नहीं, जिस से कोई पाप (क्रूरता) नहीं प्रकाशता, उस रूप से बढ़कर कल्याणकारी स्वरूप से हमारे ऊपर दृष्टि डालो । ५ । हे ‡ गिरिशान्त जिस बाण को फैंकने के लिए तुम हाथ में धारण करते हो, हे मेघ के मालिक उसको कल्याणकारी बनाओ । मनुष्य और पशु को हानि न पहुंचाओ ॥ ६ ॥

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति । ७ । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥

---

* देखो वाज० सं० १६ । २; तैत्ति० सं० ४ । ५ । १ । १ ।

† रुद्र, कड़कते हुए मेघ के अन्दर जो अग्नि है, उस अग्नि से भासती हुई महिमा को लेकर शबल रूप में परमात्मा का नाम है, उसके दो रूप हैं—शिव [कल्याणकारी] और घोर भयानक ।

‡ देखो वाज० सं० १६ । ३; तैत्ति० सं० ४ । ५ । १ । १ ।

उस से परे परब्रह्म है, सारे फैला हुआ, सब भूतों के शरीर में छिपा हुआ, अकेला सारे विश्व को घेरने वाला इस ईश को जो जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, ।७। * मैं उस महान् पुरुष को, जो सूर्य के तुल्य चमक वाला है, और अन्धेरे से परे है †, जानता हूं जो मनुष्य उसको जान लेता है, वही मृत्यु से पार उतारता है, और कोई मार्ग (वहां) जाने के लिये नहीं है ‡ ।८।

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक्ष इवस्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।९। ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥१०॥

जिस से न कुछ परे है, न वरे है, जिस से न कुछ सूक्ष्मतर है, न महत्तर है । वृक्ष को तरह जमकर यह अकेला आकाश में खड़ा है, उस पुरुष ने इस सब को पूर्ण किया हुआ है । ९ । इस (लोक) से जो परे हैं, वह रूप से रहित और दुःख से रहित है जो इस को जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, और दूसरे निःसन्देह दुःख में डूबते हैं § ॥ १० ॥

---

* वाज० सं० ३० । १८; तैत्ति० आर ३ । १२ । ७; ३।१३।१

† मिलाओ गीता ८ । ९ ॥ ‡ मिलाओ श्वेता० ६ । १५ ॥

§ संसार दुःख अर्थात् बारबार का जन्म देखो बृह० ४।३।२०-

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः
।११। महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः ।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः
॥ १२ ॥ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा
जनानां हृदये सन्निविष्टः । हृदा मनीषा मनसा
ऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१३॥

सब के मुख, सिर और ग्रीवा (गर्दन) उसकी हैं. (=वह इन का मालिक है) वह सब भूतों की (हृदय की) गुफा में रहता है, वह भगवान् सबको घेरे हुए है, इस लिये वह सर्वगत (सर्वत्र उपस्थित) शिव है। ११। वह पुरुष, महान् प्रभु है, वह सत्त्व * का प्रेरक है, वह हर एक पदार्थ में अपनी पुण्यतम प्राप्ति का मालिक है, वह ज्योति है, वह अव्यय (अविनाशि) है। १२। † अंगूठा मात्र पुरुष सदा मनुष्यों के हृदय में रहता है, हृदय से, बुद्धि ‡ से और मन

---

* सत्त्व; जो नाम अस्तित्व (हस्ती) है ॥

† तैत्ति० आर० १० । ७१; कठ० ४ । १२-१३ ॥

‡ कठ ६ । ९ और श्वेत० उप० ६ । २० की तरह यहाँ भी 'मनीषा' पाठ शुद्ध है, उपनिषद् में यहां 'मन्वीशः' पाया जाता है, जिसका अर्थ शंकराचार्य ने ज्ञानेश लिया है, पर

से निश्चित होता है, जो इसको जान लेते हैं, वे अमृत होजाते हैं। १३।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्
। १४। पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥१५॥

* वह पुरुष हजारों सिर, हजारों नेत्र, और हजारों पाओं वाला है. वह इस ब्रह्माण्ड को चारों ओर से घेर कर भी दस अंगुल उससे परे खड़ा है† ।१४। पुरुष ही यह सब कुछ है, जो हुआ है, और जो होगा ‡ वह अमृतत्त्व का भी

यह अप्रयुक्त शब्द मनीषा से ही किसी तरह बदलकर इस रूप में हो गया है ॥

* यह ऋचा ऋग्० १०। ९०। १, अथर्व० १९। ६। १, वाज० सं० ३१। १; तैत्ति० आर० ३। १२। १। यहां फिर विराट् रूप में परमात्मा का वर्णन है ॥

† अभिप्राय यह है कि वह ब्रह्माण्ड को घेर कर उस से परे भी है। शंकराचार्य ने दूसरे अर्थ में दशांगुल से हृदय लिया है, क्योंकि वह नाभि से दस अंगुल ऊपर है। अभिप्राय यह है, कि वह ब्रह्माण्ड को घेर कर हृदय में स्थित है ॥

‡ यह विराट् का वर्णन है, और यहां इस दृश्यमान समष्टि जगत रूपी शरीर से परमात्मा को शरीरी ठहराया

मालिक है, और (उसका भी मालिक है) जो अन्न से बढ़ता है * ॥१५॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१६॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥१७॥

सब जगह उसके हाथ और पाओं हैं, सब जगह उसके नेत्र, सिर और मुख हैं, सब जगह उसके कान हैं, वह लोक में सबको घेर कर खड़ा है ।१६। सारे इन्द्रियों के गुणों से चमकता है, और सारे इन्द्रियों से रहित है, सबका प्रभु सब पर ईशन करने वाला हैं, सबका बड़ा शरण, (रक्षक, पनाह) है ॥१७॥

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः । वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य ।१८।

है, इसलिये कहा है, जो हुआ है और होगा, वह पुरुष ही है ॥

* जो अन्न से बढ़ता है—संसार में भोग भोग रहा है । अर्थात् अमृतत्व (मुक्ति) का मालिक भी पुरुष है । और संसार का मालिक भी पुरुष है । मुक्ति और संसार दोनों उसकी आज्ञा में हैं, मुक्ति में अमृत और संसार में भोगों का दाता वही है ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।१९। अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः । तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।२०। वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् । जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥२१॥

यह पुर (देह) जिसके नौ द्वार * हैं, इसमें जो देह का मालिक हंस है, वह बाहर खेलता है, † सारे लोक को वश

* नौद्वार, देह के नौ छेद । सात छेद सिर के (दो आंख दो कान, दो नासा और मुख) और दो छेद नीचे के (मल मूत्र के त्याग के) देखो गीता ५ । १३ । कठ ५ । ११ में ११ द्वार कहे हैं, वहां नाभि और ब्रह्मरन्ध्र अधिक साथ मिला कर गिने गये हैं ॥

† हंस, परमात्मा, वह बाहर खेलता है, सारे विश्व में उसकी लीला है, यद्यपि वह सारे विश्व में खेल रहा है, पर उसके दर्शन हमें उसकी राजधानी में मिलते हैं, उसकी राजधानी देह है, और हृदय में उसका सिंहासन है ॥

में रखने वाला, स्थावर को भी और चर को भी । १८ । वह बिना हाथ के सबको पकड़े हुए है, बिना पाओं के वेगवाला है, बिना नेत्र के देखता है, बिना कान के सुनता है, वह हर एक जानने की वस्तु को जानता है, पर उसका कोई जानने वाला नहीं, उसको मुखिया और महान् पुरुष कहते हैं ।१९। ‡ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और महान् से महत्तर आत्मा इस जन्तु (जीव मात्र) की गुफा (हृदय) में छिपा हुआ है । वह मनुष्य जो शोक से पार होगया है, वह धाता (परमात्मा) की कृपा से उस महिमा (महान्) को देखता है, जो ईशन कर रहा है, और कामनाओं से रहित है ।२०। मैं इसको जानता हूं, जो अजर और पुराना है, सबका आत्मा है, और विभु है, इसलिये सर्वगत (सब जगह उपस्थित) है । उसके जन्म का अभाव बतलाते हैं, क्योंकि ब्रह्मवादी उसे नित्य बतलाते हैं ॥१२॥

चौथा अध्याय ।

चौथे अध्याय में प्रकृति, पुरुष और परमात्मा के स्वरूप और उनके परस्पर सम्बन्ध और बन्ध और मोक्ष का वर्णन करते हैं ॥

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णा-

---

‡ यह मन्त्र तैत्ति० आर० १० । १२ और कठ० २ । २० में भी है । पाठ 'अक्रतुम्' के स्थान 'अक्रतुः' और 'ईशम्' के स्थान 'आत्मा' है । तैत्ति० आर० ३ । १३ । १; १ । १२।७॥

नेकान् निहितार्थों दधाति । विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥१॥

जो बिना रंग के है, छिपे हुए प्रयोजन वाला * है, जो अकेला अनेक प्रकार की अपनी शक्ति के सम्बन्ध से अनेक रंगों † को उत्पन्न करता है, जो आदि में इस विश्व को मिलाता है, और अन्त में अलग २ कर देता है ‡, वह देव हमें शुभबुद्धि से संयुक्त करे ॥ १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥२॥

वही अग्नि है, वह सूर्य्य है, वह वायु है, वह चन्द्रमा है, वही शुक्र (चमकता हुआ, नक्षत्रादि) है, वह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) है, वह जल है, वह प्रजापति (विराट्) है § ॥२॥

---

* जो स्वार्थ से निरपेक्ष केवल परार्थ रचना करता है ।

† भिन्न २ प्रकार की सृष्टि ।

‡ 'विचैति चान्ते विश्वमादौ' श्रीशङ्कराचार्य्य ने इस 'आदौ' पद के अर्थ को पूर्वार्ध के साथ मिला दिया है, पर यहां की बनावट में यह पद अपने अर्थ को यहीं मिलाता हुआ प्रतीत होता है, ५ । ११ में 'यस्मिन्निदं संच विचैति सर्वम्' इसी अर्थ का संवादी है ॥

§ यहां शबल रूप में सर्वान्तर्यामी हो कर सब को शक्ति

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी । त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३ ॥ नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः । अनादिमस्त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

* तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू कुमार है, तू कुमारी है, तू बूढा हुआ दण्डे से चलता है, तू प्रकट हो कर सब ओर मुख

देता हुआ प्रकट किया है । (देखो उपनिषदों की शिक्षा, अध्याय १ पृष्ठ ११ से १२) ॥

* परमात्मा इस सारे जगत् का इतना बड़ा आश्रय है, कि इस का सर्वस्व वही है, अग्नि का अग्निपन उस के सहारे है, और सूर्य्य का सूर्य्यपन उसके सहारे है, इसी प्रकार यद्यपि हम अपनी इच्छा से चलते फिरते हैं, पर वस्तुतः हमारी सारी शक्तियां इसी के आश्रय हैं, 'हुक्म बिना भूले नहीं पाता' वह हमारे नेत्र में देखने की शक्ति और कान में सुनने की शक्ति देता हुआ वर्तमान है, इसी लिए उसे नेत्र का नेत्र और श्रोत्र का श्रोत्र कहते हैं, इसी अभिप्राय से उसे कहा है वही अग्नि है, वही आदित्य है और इसी अभिप्राय से कहा है, "तू स्त्री है, तू पुरुष है," अभिप्राय यही है, कि इन की सारी निज शक्ति उस के आश्रित है । बृहदारण्यक ६ । १ में इसी

वाला होता है * ॥ ३ ॥ तू नीला भौंरा है, लाल नेत्रों वाला हरा तोता है, तू बिजली वाला मेघ है, तू ऋतुएं है, तू समुद्र है। तेरा कोई आदि नहीं, क्योंकि तू विभु है, तू ही है, जिस से सारे भुवन उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥

अब प्रकृति, उसका कार्य्य, और पुरुष का उसको भोगना और त्यागना दिखलाते हैं—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥

एक अजा (अजन्मा स्त्री) है, जो लाल, श्वेत और काली है, समान रूप वाली है, और बहुत सी सन्तानों को उत्पन्न कर रही है। और एक अज (अजन्मा) पुरुष उसे

प्रकार की कल्पना से प्राण और इन्द्रियों का संवाद दिखला कर अन्त में यह प्रकट किया है, जब इन्द्रियों ने समझ लिया, कि हम प्राण के बिना किसी काम के नहीं, तो वाणी ने सब से अच्छा होने का अभिमान त्यागा और प्राण को कहा कि मैं जो सब से अच्छी हूं, वह तू ही है, इत्यादि। जैसे वहां प्राण और इन्द्रियों का भेद है, तथापि प्राण के आश्रित उन की महिमा दिखलाने के लिए वाणी आदि की महिमा प्राण में दिखलाई है, और प्रश्नोपनिषद २। ५-१३ में प्राण को सर्व रूप में प्रतिपादन किया है।

* यह ऋचा अथर्व १०। ८। १२ की है।

प्यार करता हुआ उस के साथ सोता है, और दूसरा अज इसे छोड़ देता है, जब उसने इस के भोग भोग लिए हैं * ॥५॥

पर मुक्ति केवल प्रकृति के त्याग से नहीं, किन्तु प्रकृति को त्याग कर अपने साथी परमात्मा के दर्शन से होती है. यह दिखलाते हैं—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयो रन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन-श्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ६ ॥ समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश मस्य महिमानमिति वीत-शोकः ॥ ७ ॥

दो पक्षी जो सदा साथ रहने वाले (कभी अलग न

---

* यहां अजा प्रकृति है, लाल श्वेत और कृष्ण तीन गुण अर्थात् रजस् सत्व और तमस् हैं, उस की प्रजा उस के कार्य हैं । पुरुष जब तक इस से प्यार करता है, तब तक इस के भोगों को भोगता है । जब उसे आत्मा प्रेमास्पद हो जाता है, सो वह इसे छोड़ देता है, यहां अजा और अज शब्द अजन्मा के अर्थ में है,जैसा कि पूर्व १ । ९ में है। अजा बकरी और अज बकरे के अर्थ में यहां नहीं, तथापि शब्दों का खेल ध्वनि से इस अर्थ को प्रकाशित करता है ।

होने वाले) मित्र हैं, दोनों एक वृक्ष को आलिंगन किए हुए हैं, उन में से एक स्वादु फल खाता है और दूसरा न खाता हुआ (केवल) देखता (ही) है * ॥ ६ ॥ उसी वृक्ष पर पुरुष निमग्न हुआ (डूबा हुआ) असमर्थता (दुर्बलता, ज्ञान बल के अभाव) से धोखा खाता हुआ शोक में पड़ा है । जब उस प्रियतम दूसरे (साथी) ईश को देखता है और उस की महिमा को देखता है, तब वह शोक से पार हो जाता है † ॥ ७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥८॥

ऋचाएं (सारी) उस अविनाशि परम आकाश (परमात्मा) में हैं (अर्थात् उस को प्रतिपादन करती हैं,) जिस में सारे देवता स्थित हैं, जो उसको 'नहीं जानता' वह ऋचा से क्या करेगा ? जो इस को जानते हैं, वही शान्ति से रहते हैं ‡ ॥ ८ ॥

---

* दो पक्षी, जीवात्मा और परमात्मा हैं । वृक्ष, शरीर है, जिस पर इन दोनों का घोंसला है, जीवात्मा इस में अपने कर्मों के फल भोगता है और परमात्मा उस को देखता है । मिलाओ ऋग् १० । १६४ । २ मुण्ड० ३ । १ । १ निरुक्त १४ । ३० कठ ३ । १ ।

† देखो मुण्डक ३ । १ । २

‡ ऋग् १ । १६४ । ३९; यह ऋचा तैत्ति० आ० २।११।६ ॥

छन्दांसि यज्ञः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति । अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिँश्चान्यो मायया संनिरुद्धः । ९ ।
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।१०।

छन्द यज्ञ (हविर्यज्ञ) क्रतु (ज्योतिष्टोमादि,) व्रत, भूत, भविष्यत् और जो कुछ और वेद बतलाते हैं इस सब को माया का मालिक (मायी) इस से रचता है, और उस में दूसरा (पुरुष) माया से रुका (बन्धा) है । प्रकृति को माया जानो और महेश्वर को मायी, सारा विश्व उस (मायी, माया शबल) के अंगों से व्याप्त है ॥ १० ॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ११ ॥

जो अकेला ही हर एक योनि (कारण) का अधिष्ठाता है, जिस में यह सब मिल जाता है (प्रलयकाल में) और फिर अलग २ होता है, उस मालिक, वरों के दाता, पूजा के योग्य, देव को जान कर सदा की शान्ति को प्राप्त होता है ॥

और नृसिंह पूर्वतापिनी ४ । २; ५ । २ में ओम् अक्षर के प्रकरण में आई है ॥

योदेवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः । हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।१२। यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः । य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

* जो देवों का उत्पन्न करने वाला, और रक्षा करने वाला है, रुद्र, महर्षि (बड़ा देखने वाला) सब का मालिक है, जिस ने प्रकट होते हुए हिरण्यगर्भ को देखा, वह हमें शुभ बुद्धि से युक्त करे, ।१२। हम किस देव को हवि से पूजा करें ? उस को, जो देवों का अधिपति है, जिस में सब लोक आश्रय लिये हैं, जो दोपाए और चौपाए पर ईशन करता है ॥१३॥

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टार मनेकरूपम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥१४॥

जो सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, कलिल (गहनगभीर संसार) के मध्य में, विश्व का बनाने वाला, अनेक रूपों वाला, अकेला सारे विश्व को घेरने वाला है, उस शिव को जान कर अत्यन्त शान्ति को प्राप्त होता है ।१४।

* देखो पूर्व ३ । ४ ।

स एव काले भुवनस्यास्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः । यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥१५॥ घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१६॥

वही समय पर इस भुवन का रक्षक होता है, सब का मालिक सब भूतों में छिपा हुआ, जिस में ब्रह्मर्षि और देवता युक्त हुए हैं, जो उस को जान लेता है वह मृत्यु की फांसों को काट देता है ।१५। वह शिव जो घृत से परे मण्ड * की तरह अतिसूक्ष्म है, सब भूतों में छिपा हुआ है, सारे विश्व को अकेला घेरने वाला है, उस देव को जानकर सारी फांसों से छूट जाता है ॥१६॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥ यदा-

---

* मण्ड, कुप्पे में घी का कुछ हिस्सा जो ऊपर २ पतला होता है, पंजाबी में जिस को पंग बोलते हैं, वह घी का भी सार होता है, जैसे दूध की मलाई ।

ऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्नचासच्छिव एव केवलः। तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥१८॥

वह देव, सब का बनाने वाला, महान् आत्मा, सदा मनुष्यों के हृदय में रहता है, वह हृदय से, बुद्धि से, मन से * प्रकाशित होता है, जो इस को जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं। १७। जब प्रकाश † उदय होता है, तो वहां न दिन, न रात है, न व्यक्त, न अव्यक्त है: वहां केवल शिव है। वह अविनाशि है, वह सविता का पूजा के योग्य प्रकाश ‡ है, सनातन प्रज्ञा (वेद का ज्ञान) उससे फैली है। १८।

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।१९। न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।२०।

---

* श्रद्धा भक्ति, विवेक, और ध्यान इन के मेल से प्रकट होता है देखो पूर्व ३। १३।

† अतमः, न अन्धेरा अर्थात् ज्ञान का प्रकाश।

‡ गायत्री मन्त्र। ऋग्० ३। ६२। १० की छाया इस मन्त्र में है, और देखो श्वेता० उप० ५। ४॥

* न उसे कोई ऊपर से पकड़ सका है, न तिरछा, न मध्य में। उसकी कोई प्रतिमा (मूर्ति, वा तुलना) नहीं है, जिस का नाम महद् (बड़ा) यश है। १९। न कोई इस का रूप (आकार) देखा जाने के लिये है, न कोई नेत्र से उसे देख सकता है। जो उस को हृदय से और मन से हृदय में स्थित देखते हैं, वे अमृत हो जाते हैं। २०।

अध्याय की समाप्ति में अपनी और अपनों की, रक्षा के लिये रुद्र से प्रार्थना करते हैं—

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ।२१। मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। वीरान् मा नो रुद्र भामितोऽवधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥२२॥

'तू अजन्मा है' ऐसा कहता हुआ कोई पुरुष कांपता हुआ तेरी शरण में आता है। हे रुद्र जो तेरा उत्साह देने वाला मुख † (चेहरा) है, उससे मेरी सदा रक्षा कर ।२१। ‡ हे

---

* इस मंत्र का पूर्वार्ध यजु० ३२।२ का उत्तरार्ध है, और इसका उत्तरार्ध यजु ३२।३ का पूर्वार्ध है॥

† ध्यान किया हुआ प्रसन्न करने वाला है।

‡ यह ऋचा, ऋग्वेद १।११४।८; वाज० सं० १६।१६ की है। पाठ में यह भेद है, कि 'आयुषि' की जगह ऋग्वेद में

रुद्र ! न हमारी सन्तान में न उस से अगली सन्तान (पोते आदि) में हानि पहुंचाओ, न हमारी आयु में, न हमारी गौओं में, न हमारे घोड़ों में हानि पहुंचाओ । हे रुद्र ! क्रोध में हमारे वीरों को न मारो, हम हवि लेकर सदा तुम्हें बुलाते हैं ॥२२॥

पांचवां अध्याय ।

इस अध्याय में परमात्मा का अधिष्ठातृत्व और जीवात्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं—

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये विहिते यत्र गूढे । क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥१॥

परब्रह्म, जो अविनाशि, अनन्त और (सब भूतों में) गूढ़ है उस में विद्या (उपासना) और अविद्या (कर्म) दोनों

'आयौ' है, 'भामितः' की जगह वाजसनेय में 'भामिनः' पाठ है, और सब में 'भामितः' है । यहां उपनिषद् में जो 'भावितः' पाठ मिलता है, वह लेखक प्रमाद से है । चौथा पाद ऋग्वेद में 'हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे' है, वाजसनेय संहिता में भी ऐसा ही है, तैत्तिरीय में 'हविष्मन्तो नमसा विधेमते' है, यहां उपनिषद् में 'हविष्मन्तः सदसि त्वा हवामहे' है, शङ्करानन्द और विज्ञानात्मा ने अपनी व्याख्या में 'सदमित्त्वा' ही माना है ॥

स्थापित हैं, * इन में से अविद्या (कर्म) नाश होने वाली है, पर विद्या (उपासना) अमृत है, वह जो विद्या और अविद्या पर ईशन कर रहा है, वह इन से अलग है ॥१॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः । ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानञ्च पश्येत् ॥२॥

जो अकेला हर एक योनि पर निरीक्षण (निगहबानी) करता है, सब रूपों (आकारों) पर, और सब योनियों पर, जो पहले उत्पन्न हुए कपिल ऋषि को ज्ञानों से भर देता है, और उत्पन्न होते हुए पर दृष्टि डालता है ॥ २ ॥

एकैकं जालं वहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः । भूयः सृष्ट्वा यतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥ सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् । एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥४॥

---

* कर्म और उपासना दोनों का परम तात्पर्य ब्रह्म की प्राप्ति है । अविद्या कर्म और विद्या उपासना (देखो॰ ईश ९--११)

यह देव एक एक जाल को * इस क्षेत्र (लोक) में अनेक प्रकार से फैलाता हुआ फिर समेट लेता है, इसी प्रकार वह महान् आत्मा ईश है यतियो ! वार २ रचकर सब पर ईशन करता है ॥३॥ जैसे सूर्य सारी दिशाओं में, ऊपर, नीचे और तिरछा प्रकाश देता हुआ चमकता है, इस प्रकार वह पूजनीय, भगवान्, देव, अकेला भिन्न २ योनियों के स्वभावों पर निरीक्षण करता है ॥४॥

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद्यः । सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥ तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् । ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥६॥

जो विश्वयोनि (सब का जन्मस्थान) (योनि योनि के) स्वभाव को पकाता है (दृढ़ करता है) और जो पकने योग्य हैं † उन को बदलता रहता है, जो अकेला एक एक पर और सब पर निरीक्षण करता है, और जो सारे गुणों को विनियुक्त

---

* मनुष्य पशुआदि के शरीर को।

† धीरे २ परिणत होते हुए उच्च अवस्था में आने योग्य हैं। 'पाच्यान्' की जगह 'प्राच्यान्' पाठ भी मिलता है, अर्थ पहले उत्पन्न हुओं को धीरे २ परिणत करता है ॥

करता है (काम में लगाता है, प्रजा के भोग के उपयोगी बनाता है) ॥५॥ वह वेद के गुह्य रहस्यों में छिपा हुआ है, वह जो ब्रह्मा का कारण है, उस को वह जान पाता है, जो सच्चा ब्राह्मण है, पहिले जिन ऋषियों और देवताओं ने उस को जाना, वह तन्मय (उसी के रंग में रंगे हुए) होकर अमृत होगए ॥ ६ ॥

अब छः मंत्रों मे जीवात्मा का वर्णन करते हैं—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव सचोपभोक्ता । स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥७॥ अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोपि दृष्टः ॥८॥

पर वह (अपर, जीवात्मा) जो (वासनाओं) से युक्त है, फल वाले कर्मों का करने वाला है, और किए हुए उस (कर्म) का ही फल भोगने वाला है, वह सारे रूपों (देहों) वाला, तीन गुणों वाला, तीन मार्गों वाला, * प्राणों का

* तीन गुण, सत्व, रजस् तमस्; देहधारियों के स्वभाव इन तीनों गुणों के अनुसार सत्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होते हैं। और तीन मार्ग धर्म, अधर्म ज्ञान (शुक्ल, कृष्ण और अधोगति) ।

मालिक अपने कर्मों से घूमता है । ७ । वह जीवात्मा (अपर) जो आर का अग्रमात्र है, वह मन के गुण से अंगूठामात्र और सूर्य के तुल्य चमकता हुआ और संकल्प और अहङ्कार से युक्त देखा गया है * ॥ ८ ॥

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः सचानन्त्याय कल्पते॥९॥ नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः । यद्य-च्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥१०॥

बाल की नोक का जो सवां भाग है, वह सौ टुकड़े किया हुआ, उस का एक हिस्सा (अतीव सूक्ष्म) जीव को जानना चाहिये । और वह अनन्तता के लिए समर्थ होता है । ९ । न यह स्त्री है, न पुरुष है, और न ही नपुंसक है, जिस २ शरीर को ग्रहण करता है, उस २ के साथ वह सम्बद्ध होता है ॥ १० ॥

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्याऽऽत्म

---

* आर, चाबुक का पतला सिरा, आराग्रमात्र, चाबुक के सिरे का बिन्दुमात्र । स्वयं एक बिन्दुमात्र है, पर हृदय-देश में लिङ्ग शरीर के साथ अंगूठामात्र प्रतीत होता है और संकल्पों से युक्त होजाता है, अपने निजधर्म को लेकर वह रवितुल्य अर्थात् चैतन्य रूप और अहङ्कार (अस्मिता, मैं हूं) वाला प्रतीत होता है ॥

विवृद्धजन्म । कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥११॥ स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति । क्रियागणैरात्मगणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोपि दृष्टः १२

संकल्प, छूना, देखना और मिथ्याज्ञान के द्वारा यह देही (जीव) भिन्न २ स्थानों में कर्मों के अनुसार रूपों (देहों) को क्रम से प्राप्त होता है, जैसे अन्न और जल से शरीर की वृद्धि होती है * । ११ । देहधारी (आत्मा) अपने गुणों से स्थूल और सूक्ष्म बहुत से रूपों (आकारों) को चुनता है, और अपने कर्मों के धर्मों (असरों) से और आत्मा के धर्मों (इच्छा आदि) से उन (आकारों) के साथ अपने संयोग का हेतु होकर भिन्न २ दीखता है ॥ १२ ॥

जीवात्मा का स्वरूप और उसका संसार में घूमना वर्णन करके उसकी मुक्ति का उपाय बतलाते हैं:—

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।१३। भावग्राह्यमनीडाख्यं

* शंकराचार्य के अनुसार अर्थ दे दिया है, यह वचन स्पष्ट नहीं, पाठ भी कई प्रकार का मिलता है ॥

भावाभावकरं शिवम् । कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जुहुस्तनुम् ॥१४॥

* जिस का न आदि है न अन्त है, जो इस गहन गभीर (जगत्) के मध्य में, सारे विश्व का रचने वाला, अनेक रूपों वाला, अकेला सब का घेरने वाला है, उस देव को जान कर सारी फांसों से छूट जाता है । १३ । जो भावना (श्रद्धा, भक्ति) से ग्रहण किया जाता है, जो निराधार कहलाता है, जो सृष्टि और प्रलय का करने वाला है, शिव (कल्याणरूप) है कलाओं † का रचने वाला है, जो उस देव को जानते हैं, वे शरीर को छोड़ देते हैं ॥ १४ ॥

छटा अध्याय ।

इस अन्तिम अध्याय में स्वभाव आदि को जगत् का कारण मानने वालों का व्यामोह दिखलाते हुए ईश्वर की महिमा की पूणता दिखलाते हैं ।

स्वभाव मेके कवयो वदन्ति कालं तथाऽन्ये परिमुह्यमानाः । देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥१॥ येनावृतं नित्यमिदं हि

* मिलाओ ३ । ७; ५ । १४, १६ ।

† कलाएं, प्रश्नोपनिषद् (६ । ४) में कही सोलह कलाएं- प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, काल, नाम ।

सर्वज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः । तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्याप्यतेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥२॥

कई विद्वान् 'धोखा खाते हुए स्वभाव को, और दूसरे काल को (हर एक कार्य का कारण) बतलाते हैं *, पर लोक में यह महिमा देव की है, जिस से यह ब्रह्मचक्र घुमाया जा रहा है । १ । जिस से यह सब सदा घिरा हुआ है, जो जानने-वाला, काल का काल, † गुणों से और सारी विद्याओं से युक्त है, उस से ईशन किया हुआ यह कार्य (सृष्टि) भिन्न रूपों में बदलता है, जो पृथिवी, जल, तेज, वायु; और आकाश कहलाता है । २ ।

तत् कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्वस्य तत्वेन समेत्य योगम् । एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥३॥ आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः । तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्वतोऽन्यः ॥४॥

उस कर्म को करके और फिर हट कर एक तत्व

---

*देखो पूर्व ।१।२॥ † काल का भी नाशक, देखो आगे १६

(चेतन) को दूसरे तत्त्व (जड़) के साथ मिलाकर—अर्थात् एक, दो, तीन और आठ के साथ * काल के साथ और मन के सूक्ष्म गुणों के साथ मिला कर, । १ । जो (तीन) गुणों वाले कार्यों को आरम्भ करके सारे भावों को अपने २ काम में लगाता है, और जब उन का अभाव होता है, तो पहले की हुई रचना का नाश होता है, रचना जब नाश होगई है, तो भी वह अपने स्वरूप से वर्तमान रहता है जो (इन सब से) भिन्न है ॥ ४ ।

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।५। स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।६। तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥

वह आदि है, संयोग के कारणों का कारण है, तीनों

---

* एक, अविद्या; दो सत्य, असत्य; तीन, सत्व, रजस्, तमस्; आठ, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार (शङ्करानन्द) ।

कालों से परे, बिना अवयवों के देखा गया है, उस, अनेक रूपों वाले, और (सब वस्तुओं के) सच्चे प्रभव, अपने चित्त में स्थित, पूजा के योग्य देव को पहले उपास कर; । ५ । वह जो (संसार) वृक्ष * के और काल के आकारों से परे, इन से न्यारा है, जिस से यह सारा प्रपञ्च घूमता है, उस, धर्म के लाने वाले और पाप से हटाने वाले, ऐश्वर्य के मालिक; सब के आश्रय, अमृत को अपने आत्मा में स्थित जानकर, । ६ । उस, ईश्वर के परम ईश्वर, देवताओं के परमदेवता, पतियों के परमपति, परे से परे, भुवन के मालिक, पूजा के योग्य देव को ढूंढ पाए ॥ ७ ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च । ८ । न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥

न उस का शरीर और इन्द्रिय हैं, न उस से कोई बढ़ कर, न उस के बराबर दीखता है, इस की परा (ऊंची) शक्ति अनेक प्रकार की सुनी जाती है † उस में ज्ञान और

---

* संसार वृक्ष का वर्णन कठ० ६ । १ में है ॥

† सुनी जाती है, श्रुति द्वारा जानी गई है ।

बल की शक्ति स्वाभाविक है † ।८। लोक में कोई उस का पति नहीं है, न उस पर ईशन करने वाला, और न ही कोई उस का चिन्ह है, वह कारण है, इन्द्रियों के मालिकों का मालिक है ‡ उसका न कोई मा बाप हैं, न मालिक है ॥ ९ ॥

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत् । स नो दधाद् ब्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥

वह अकेला देव जो मकड़ी की नाईं प्रधान (मूल प्रकृति) से उत्पन्न होने वाले तन्तुओं (कार्यों) से स्वभावतः अपने आप को घेर लेता है § वह हमें ब्रह्म में लय [समाधि] देवे ॥ १० ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।११। एको वशी

---

† वह स्वभाव से सब को जानता है, और स्वभाव से सब को वश में रखे हुए है ।

‡ इन्द्रियों के मालिक, सारे जीवात्मा, उन सब का भी मालिक है ।

§ जो कुछ उस ने रचा है, उसी के परदे में वह आप छिपा हुआ है ।

निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

वह एक देव है, सब भूतों में छिपा हुआ है, सर्व-व्यापक, सब भूतों का अन्तरात्मा (अन्तर्यामी आत्मा) कर्मों का अधिष्ठाता, सब भूतों में रहने वाला, सब का साक्षी, चेतन, केवल (एकतत्त्व) और निर्गुण (सत्त्व, रजस् तमस्* इन गुणों से अलग) है॥ ११ ॥ †वह अकेला उन बहुतों को वश में रखने वाला है, जो स्वाभाविक क्रिया वाले नहीं हैं, वह एक बीज (प्रकृति) को अनेक प्रकार का बना देता है। जो धीर पुरुष उस को आत्मा में स्थित देखते हैं, उन को सदा सुख होता है, दूसरों को नहीं ॥ १२ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥ न तत्र

* देखो कठ० उप० ५ । १२—१५ ॥

† जड़ पदार्थ क्रिया करते हुए भी वस्तुतः निष्क्रिय हैं, क्योंकि वह स्वभावतः नहीं, किन्तु उसी के बल से परिचालित होकर क्रिया करते हैं ॥ निष्क्रिय = जीव, क्योंकि प्राणियों की सारी क्रियाएं देह और इन्द्रियों में समवेत हैं, आत्मा में नहीं (शंकराचार्य)

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४॥

नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन, जो अकेला ही बहुतों की कामनाओं को रचता है, उस देव को जो, कारण है, और सांख्य और योग से जानने योग्य है, जानकर सारी फांसो से छूट जाता है। १३ । * वहां न सूर्य चमकता है, न चन्द्र और तारे, न वहां बिजलियें चमकती हैं, यह अग्नि तो क्या। उसी के चमकने के साथ यह सब चमकता है, उस के प्रकाश से यह सब चमकता है ॥ १४ ॥

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१५॥ स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थिति बन्धहेतुः ॥१६॥

एक हंस इस सारे भुवन के मध्य में है। वही अग्नि होकर जल में प्रविष्ट है, उसी को जानकर मृत्यु से पार

* देखो कठ० ५।२।१५; मुण्डक २।२।१०, गीता १५।६।

होता है, और कोई मार्ग चलने के लिए नहीं है, ॥ १५ ॥ वह सब को बनाने वाला, सब का जानने वाला है, आत्मयोनि (स्वयम्भू,) चेतन, काल का काल [काल का नाश करने वाला] गुणों से युक्त, सारी विद्याओं से युक्त, प्रकृति का और जीवात्मा का मालिक, [तीनों] गुणों का मालिक संसार के बन्ध, स्थिति और मोक्ष * का कारण है ॥ १६ ॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता। य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥१७॥

वह तन्मय † अमृत है, ईश की मर्यादा वाला ‡, जानने वाला, सब जगह पहुंचा हुआ, इस सारे भुवन का रक्षक है, सदा इस जगत् पर ईशन करता है, क्योंकि और कोई हेतु (इस जगत् पर) ईशन करने के योग्य नहीं है ॥ १७ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरण महं प्रपद्ये ॥१८॥

जो पहले ब्रह्मा § को बनाता है, और जो वेदों को उस के लिए भेजता है, जो आत्मविद्या का प्रकाश करने वाला है,

---

* उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय अथवा बन्धमोक्ष और रक्षा।

† तन्मय तद्रूप; एकही तत्त्व, विज्ञान घन।

‡ इस जगत् पर ईशन करने वाले, पवित्र आत्मा में जो मर्यादा सजती हैं, वह उस में पाई जाती हैं।

§ ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ, महत्तत्त्व का अधिष्ठाता बन कर

मुक्ति को चाहता हुआ मैं, इस देव की शरण लेता हूं ॥ १८ ॥

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धन मिवानलम् ॥१९॥

जो निरवयव, निश्चल, शान्त, निर्दोष और निर्लेप है अमृतत्व का परला सेतु (=पुल) है-जिस का इन्धन जल चुका हो ऐसी अग्नि की नाईं (शुद्ध, ज्योतिर्मय) है * ।१९।

दुःख की समाप्ति परमात्मा के जाने बिना कभी नहीं होती यह दिखलाते हैं ॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।२०।

जब लोग चर्म की नाईं आकाश को लपेट सकेंगे, तब देव के जाने बिना दुःख का अन्त होगा † ॥ २० ॥

महत्तत्त्व के साथ शबल रूप में हिरण्यगर्भ कहलाता है. और महत्तत्त्व ही व्यष्टिरूप में बुद्धितत्त्व है, सो ऋषियों की बुद्धि में वेदों का प्रकाश हिरण्यगर्भ से आया है, जैसा कि मुण्डक [१ । १] में भी कहा है। और हिरण्यगर्भ में यह प्रकाश शुद्धब्रह्म से आया है ।

* यह शुद्ध का वर्णन है, जिस से वेद का प्रकाश शबल में प्रकाशित होता है ।

† हृदय में परमात्मा को ढूंढे बिना दुःख का अन्त होना असम्भव है, जैसे आकाश का लपेटना ।

समाप्ति में यह दिखलाते हैं कि पहले यह विद्या किस ने किन को उपदेश की है और अब इस के उपदेश के अधिकारी कौन हैं ॥

तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वरोऽथविद्वान् । अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥२१॥

तप के प्रभाव से और परमात्मा की कृपा से ज्ञानी श्वेताश्वतार ने ऋषियों के संघ से प्यार किया हुआ यह परमपवित्र ब्रह्म [वेद, वेद का रहस्य] संन्यासियों को ठीकर उपदेश दिया ॥ २१ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥२२॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२३॥

यह, वेदान्त में परम रहस्य, जो पहले समय में उपदेश किया गया है, यह किसी ऐसे पुरुष को नहीं देना चाहिए, जो पूरा शान्त नहीं है, और न पुत्र है. न शिष्य है ॥ २२ ॥ यह विषय जो यहां बतलाए हैं, उस महापुरुष को प्रकाशित होते हैं, जिस की देव [परमात्मा] में परमभक्ति है। और जैसी देव में है, वैसी गुरु में है ॥ २३ ॥

सूचीपत्र

संस्कृत के अनमोल रत्न

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमैन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं। योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है। इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत। वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है। टीका बड़ी सरल है। इस पर ७००) इनाम मिला है। भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—इस की भी टीका रामायण के तुल्य ही है। दो भागों में छपा है। प्रथम भाग ६॥) द्वितीयभाग ६।) दोनों भाग १२)

(५) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत। भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध। इस पर ३००) इनाम मिला है। मूल्य २।), गीता हमें क्या सिखलाती है मूल्य ।~)

गीता गुटका—सरल भाषा टीका समेत ॥)

(६) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१–ईश उपनिषद	≈)	७–तैत्तिरीय उपनिषद	॥)
२–केन उपनिषद	≈)	८–ऐतरेय उपनिषद	≈)
३–कठ उपनिषद	।≈)	९–छान्दोग्य उपनिषद	२।)
४–प्रश्न उपनिषद	~)	१०–बृहदारण्यक उपनिषद	२।)
५,६–मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी	।=)	११–श्वेताश्वतर उपनिषद	।~)